नियमसार, १०६ गाथा का कलश है। १४४वाँ कलश।

घोरसन्सृतिमहार्णवभास्वद्यानपात्रमिदमाह जिनेन्द्रः।
तत्त्वतः परमतत्त्वमजस्रं भावयाम्यहमतो जितमोहः।।१४४।।

मुनि कहते हैं कि **घोर संसारमहार्णव...** संसार चौरासी लाख अवतार घोर महासंसार है। एकेन्द्रिय में, दोइन्द्रिय में, त्रीन्द्रिय में, निगोद में यह महाभव घोर संसार है। ऐसे **घोर संसारमहार्णव...** अर्थात् समुद्र। उसका **यह (परम तत्त्व) दैदीप्यमान नौका है...** नाव है। आत्मा चैतन्यस्वरूप अतीन्द्रिय, आनन्द राग और पुण्य-पाप के राग से भिन्न ऐसा आत्मतत्त्व

है। वह **संसारमहार्णव की यह (परम तत्त्व) दैदीप्यमान नौका...** इस नाव से संसार समुद्र तरते हैं। परम तत्त्व जो आनन्दस्वरूप, उसमें एकाग्र होकर... आहाहा!

शुभ और अशुभभाव, पुण्य और पाप के भाव भी दोनों बन्ध का कारण है। उन्हें छोड़कर जो अपने स्वरूप में **(परम तत्त्व) दैदीप्यमान नौका है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है;...** अब तो यह चारों ओर आया था। आज पत्र आया है। किसका पत्र है? वैष्णव का एक अन्यमति का पत्र है न? पत्र है न? पीठडिया का? रहता है पीठडिया। है लड़का परन्तु यह अपने राजकोटवाले शान्तिभाई हैं न? उन्हें कुछ सम्बन्ध होगा तो पत्र लिखा होगा। परन्तु है अन्यमतिवाला। पढ़कर तो बहुत प्रसन्न हुआ। ओहोहो! ऐसी बात! आत्मा अन्दर में चैतन्यमूर्ति का अवलम्बन लेना और उसमें से आगे बढ़ा जाता है। ऐसा बहुत सरस लिखा है। पत्र आया है।

यहाँ कहते हैं कि यह संसार, घोर संसार चौरासी के अवतार, मनुष्य के अवतार या देव के अवतार, परन्तु वहाँ से नरक और निगोद के अवतार होते हैं। आहाहा! उन्हें तरने का परम तत्त्व, चैतन्यतत्त्व, **दैदीप्यमान नौका है...** चैतन्य चमत्कार चैतन्य से भरपूर भगवान है। आहाहा! चैतन्य और आनन्द से भरपूर आत्मा है। पूर्ण ध्रुवस्वभाव है। उसका अनन्त आनन्द, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड वीर्य से भरपूर वह तत्त्व है परन्तु उसे जँचे कैसे? पर्याय में दिखता नहीं, पर्याय अन्दर में जाए नहीं और उसे यह मानना। आहाहा!

अन्तर चीज़ है न? वस्तु है न? आत्मा तत्त्व है या नहीं? तो है तो उसमें कोई स्वभाव है या नहीं? तो उसका स्वभाव अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि स्वभाव है। प्रत्येक आत्मा का अन्दर ऐसा स्वभाव है। उस परम तत्त्व को, संसार के मूल को **दैदीप्यमान नौका है...** तरने के लिये नाव। जैसे नाव से सागर तर जाते हैं, वैसे इससे समुद्र तिरते हैं। **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है;...** है? आहाहा! कोई व्यवहार से तिरता है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि धर्म से (तिरता है-ऐसा नहीं)। एक घण्टे भगवान की भक्ति-पूजा करे तो मानो हो गया धर्म। उस एक घण्टे सामायिक करे, हो गया धर्म। अब फिर तेईस घण्टे पाप। धर्म कहाँ था अभी? उसमें तो शुभभाव का ठिकाना नहीं।

यहाँ तो कहते हैं। **ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है;...** संसार, घोर संसार... आहाहा!

कहाँ निगोद का जीव और कहाँ एकेन्द्रिय तथा कीड़ी-मकोड़ा का जीव। आहाहा! वहाँ था और वहाँ रहा है। ऐसा घोर महासंसार, उसे तिरने का उपाय दैदीप्यमान एक नाव आत्मा है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, चिदानन्दस्वरूप है, उसका भान होने से संसार का अन्त और छोर आता है। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से छोर नहीं आता।

इसलिए मैं मोह को जीतकर... मुनिराज स्वयं कहते हैं; **इसलिए मैं मोह को जीतकर निरन्तर परम तत्त्व को...** आहाहा! परसन्मुख की सावधानी के भाव को छोड़कर, स्वतत्त्व की सावधानी के भाव को ग्रहण करके **निरन्तर परम तत्त्व को तत्त्वतः (पारमार्थिक रीति से) भाता हूँ।** लो, ऐसी भाषा। इसमें बाहर का करने का क्या? बाहर का करने का होवे तो ठीक। यह करना, छोड़ना, दिया, लिया। करे क्या? बाहर में क्या करे? अन्दर में अभी अज्ञान, मिथ्यात्वभाव है। राग है, वह मेरा है; पर का कर सकता हूँ; पर से मुझमें बिगाड़-सुधार होता है; मुझसे पर में बिगाड़-सुधार होता है—यह सब मान्यता भ्रम है, अज्ञान है। पर को बचा सकता हूँ, पर को मदद कर सकता हूँ, पर मुझे मदद कर सकता है, यह सब भ्रमणा मिथ्यात्व है। आहाहा!

इस मिथ्यात्व को तजकर। जीतकर कहा न? **निरन्तर परम तत्त्व को...** निरन्तर जो परम तत्त्व भगवान आत्मा अन्दर है, उसे **तत्त्वतः (पारमार्थिक रीति से) भाता हूँ।** परम तत्त्व को तत्त्वतः-परमार्थ से भाता हूँ। आहाहा! अकेला ऐसा कहे, जानपना ऐसा है, ऐसा रखकर नहीं। मैं तो परमार्थ से तत्त्वतः तत्त्व से जानता हूँ, अन्दर में अनुभव से जानता हूँ। आहाहा! यह मुनि की दशा होती है। सम्यग्दर्शन पहले होता है। आहाहा! शुद्धोपयोग हो, तब तो उसे मुनिपना कहा जाता है। यहाँ तो शुद्धोपयोग से इनकार करते हैं कि अभी नहीं होता।

मुमुक्षु : उन्हें नहीं है, इसलिए इनकार ही करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें नहीं, परन्तु समाज में इनकार करते हैं। वापस भरतक्षेत्र में सब साधु शुभभाववाले ही हैं। किसी को ऐसा कि शुभ आगे बढ़ सके, ऐसा है ही नहीं, ऐसा।

यहाँ तो कहते हैं कि मैं तो मिथ्यात्व को **जीतकर निरन्तर परम तत्त्व को तत्त्वतः**

(पारमार्थिक रीति से) भाता हूँ। यह करना है। अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति का सागर, ऐसे तत्त्व की अन्दर में भावना करना, एकाग्रता करना, वह संसार समुद्र के पार का उपाय है। आहाहा! वह इसमें निवृत्त कब हो?

१४४वाँ कलश हुआ।

श्लोक-१४५

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानं भवति सततं शुद्धचारित्रमूर्तेः,
भ्रान्तिध्वन्सात्सहजपरमानन्दचिन्निष्ठबुद्धेः।
नास्त्यन्येषामपरसमये योगिनामास्पदानां,
भूयो भूयो भवति भविनां सन्सृतिर्घोररूपा।।१४५।।

(वीरछन्द)

भ्रान्तिनाश से जिनकी बुद्धि सहज परम चेतन में निष्ठ।
ऐसे शुद्ध चरित्रमूर्ति को होता प्रत्याख्यान विशिष्ट॥
जो योगी हैं अन्य-समय में उन्हें न होता प्रत्याख्यान।
उन संसारी जन को होता पुनः पुनः संसरण महान॥१४५॥

[श्लोकार्थः] भ्रान्ति के नाश से जिसकी बुद्धि सहज-परमानन्दयुक्त चेतन में निष्ठित (-लीन, एकाग्र) है, ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को सतत प्रत्याख्यान है। परसमय में (-अन्य दर्शन में) जिनका स्थान है, ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता; उन संसारियों को पुनः पुनः घोर संसरण (-परिभ्रमण) होता है॥१४५॥

श्लोक -१४५ पर प्रवचन

१४५ वाँ कलश।

प्रत्याख्यानं भवति सततं शुद्धचारित्रमूर्तेः,
भ्रान्तिध्वन्सात्सहजपरमानन्दचिन्निष्ठबुद्धेः।

नास्त्यन्येषामपरसमये योगिनामास्पदानां,
भूयो भूयो भवति भविनां सन्सृतिर्घोररूपा ।।१४५।।

१४५ (कलश)। **भ्रान्ति के नाश से...** यह पहला बोल यह रखा है। भ्रान्ति अर्थात् अन्दर शरीर से मैं काम कर सकूँ, वाणी से मैं कर सकूँ, पुण्य और पापभाव वे मेरे हैं, यह मान्यता सब भ्रान्ति; भ्रान्ति अर्थात् मिथ्यात्व है। आहाहा! मुम्बई मोहनगरी में तो ऐसा बड़ा धन्धा चलता है, बाहर से धन्धा चलता है। धमाल.. धमाल.. धमाल.. अब उसे यह... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **भ्रान्ति के नाश से...** मैं तो भगवान शुद्ध चैतन्य हूँ और रागादि मेरी चीज़ नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह राग है, वह मैं नहीं तो फिर दूसरा मैं नहीं, यह कहाँ से आया? आहाहा! यह तो मेरा धन्धा, मेरा धन्धा मुझे धीकता। क्या कहलाता है धीकता (जोरदार) धन्धा चलता है, ऐसा बनिये बोलते हैं। अभी धन्धा जोरदार चलता है, धोधमार चलता है, आमदनी अच्छी चलती है। चिमनभाई! बहुत लोग पैसेवाले हों, उन्हें दो-पाँच लाख इकट्ठे हुए हों, तो महीने में पच्चीस-पच्चीस हजार की जोरदार आमदनी होती है। ओहो! यह तो साधारण बात करता हूँ, हों! दिन की दस-दस हजार, पन्द्रह-पन्द्रह हजार की आमदनीवाले बनिये अभी हैं। दिन के दस हजार और पन्द्रह हजार की आमदनी। अभी ऐसा व्यापार मुम्बई में है। पावर, मस्तिष्क में पावर चढ़ जाता है। आहाहा! हम कमाते हैं, यह पैसा... आहाहा!

भ्रान्ति के नाश से... यह भ्रमणा छोड़ दे। यह चैतन्यस्वरूप तो किसी का नहीं और कोई तेरा नहीं। यह दया, दान का राग जो विकल्प उठता है, वह भी तेरा नहीं और तू उस विकल्प का नहीं। इस प्रकार **भ्रान्ति के नाश से जिसकी बुद्धि सहज-परमानन्दयुक्त...** आहाहा! जिसे भ्रान्ति का नाश और मिथ्यात्व का नाश होता है, उसकी बुद्धि में स्वभाविक परमानन्द आता है। स्वभाविक परमानन्द ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द आता है। आहाहा! क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! यह इन्द्रियों का आनन्द, वह तो जहर है। वह जहर का प्याला, विषय का प्रेम। यह तो आत्मा में अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द भरा है।

भ्रान्ति के नाश से जिसकी बुद्धि सहज-परमानन्दयुक्त... आहाहा! देखो न!

कितना स्पष्ट किया है! मिथ्यात्व के नाश से **जिसकी बुद्धि सहज-परमानन्दयुक्त चेतन में निष्ठित (-लीन, एकाग्र) है...** सहज परमानन्दयुक्त चेतन। चेतन आत्मा कैसा है? कि सहज स्वभाविक परमानन्दयुक्त है। आहाहा! वह तो सुख का सागर है, सुख का समुद्र है तथा पुण्य और पाप के भाव, वह तो दु:ख का समुद्र है। दु:ख है दु:ख। यह कैसे जँचे? युवा शरीर हो, उसमें दो-चार-पाँच-दस करोड़ रुपये और हो जाएँ। पैसा उड़ावे... आहाहा! महीने में दस-दस लाख की आमदनी हो। उसे यह जँचे किस प्रकार? भटकने का रास्ता।

भ्रान्ति के नाश से... प्रभु! मिथ्यात्व के नाश से। **जिसकी बुद्धि...** अर्थात् ज्ञान। **सहज-परमानन्दयुक्त चेतन में निष्ठित (-लीन, एकाग्र) है...** आहाहा! **सहज-परमानन्दयुक्त चेतन...** ऐसा आत्मा, उसमें भ्रान्ति के नाश से उसमें लीन होता है, एकाग्रता है। आहाहा! संक्षिप्त शब्द परन्तु भाव बहुत ऊँचे। नये लोगों को लगता है कि यह क्या? परन्तु इसमें क्या करना? यहाँ करने का... करने का... करने का... यह अन्दर स्थिर होने का है। अन्दर तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान आनन्द से भरा है, वहाँ जाकर स्थिर होना, यह एक करना है। बाकी सब शून्य है। आहाहा!

सहज-परमानन्दयुक्त चेतन... आहाहा! स्वभाविक परमानन्द अन्तर, उसके सहित चेतन, अकेला चेतन नहीं। उस परमानन्दयुक्त-सहित चेतन में जिसकी एकाग्रता है। **ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को...** अब चारित्र लिया। **ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को...** स्वरूप में रमणता। अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता। चारित्रमूर्ति को **सतत प्रत्याख्यान है।** उसे निरन्तर प्रत्याख्यान है। उसके प्रत्याख्यान का यह स्वरूप है। आहाहा! हाथ जोड़कर बैठे, प्रत्याख्यान दूँ, अमुक दूँ। वह कहाँ प्रत्याख्यान था? आहाहा!

सहज-परमानन्दयुक्त चेतन में निष्ठित (-लीन, एकाग्र) है, ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को सतत प्रत्याख्यान है। आहाहा! उसे प्रत्याख्यान है। बाकी सबको मिथ्यात्वसहित अप्रत्याख्यान है। आहाहा! **परसमय में (-अन्य दर्शन में) जिनका स्थान है...** जिनेन्द्र तीन लोक के नाथ, उनकी जो वाणी और उनका मार्ग, उसमें जो नहीं है और अन्य में जो है। जिनेन्द्र के अतिरिक्त दूसरे मार्ग में जो है, **ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;...** आहाहा! वीतरागमार्ग के अतिरिक्त, वह भी दिगम्बर सन्तों ने कहा, वह वीतरागमार्ग

है। वह वीतराग ने कहा, वह यह मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्यमत के। इसके अतिरिक्त सब अन्यमत है। कठिन काम है। ३६३ पाखण्ड अन्यमत है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी भी अन्यमत है। वह जैनमत नहीं है। आहाहा! कठिन पड़ता है। क्या हो? लोगों को बेचारों को खबर नहीं। जहाँ जन्मे वहीं का वहीं अपना मानते हैं। 'जैसी कुले समुप्पन्ने' जिस कुल में उत्पन्न हुआ और जिसका संग रहा, वह माना। तत्त्व की तो खबर नहीं होती कि तत्त्व क्या है? आहाहा!

अन्य—वीतराग के अतिरिक्त जितने अन्यमार्ग के स्थान हैं। **ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;...** आहाहा! इसमें श्वेताम्बर भी आये, हों! तुम स्थानकवासी भी आये। स्थानकवासी और श्वेताम्बर में प्रत्याख्यान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उनके साधु को प्रत्याख्यान नहीं होता। प्रत्याख्यान, वह साधु नहीं वह तो अज्ञानी साधु है।

मुमुक्षु : उनके शास्त्रों में दूसरे प्रकार से कहा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके शास्त्रों में लिखा, वह शास्त्र ही कल्पित है। वे सब शास्त्र कल्पित बनाये हैं।

मुमुक्षु : किसी आचार्य के लिखे हुए नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य के, परन्तु वे मिथ्यादृष्टि आचार्य के।

मुमुक्षु : उनमें पहले कहा साधु को आहार दे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; (संसार) परित हो जाता है। मिथ्यादृष्टि होने के बाद... बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! बहुत लम्बा करने जाएँ तो... आहाहा! एक दर्शनसार पुस्तक है न, उसमें तो ऐसा लिखा है कि उनका जो निकालनेवाला है, वह तो नरक में गया है। अनन्तानुबन्धी का सेवन करके। दर्शनसार पुस्तक है। देवसेन आचार्य का है। सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ पक्ष-बक्ष की बातें नहीं है। यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं, उसकी बात है। बात कठिन तो लगती है, परन्तु दूसरा क्या हो? बापू! यह उसके हित की बात है, भाई! आहाहा!

जिसमें साधुपना नहीं, प्रत्याख्यान नहीं, उसे प्रत्याख्यान मानना, वह तो मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व के कारण अनन्त-अनन्त गर्भाशय में जाना पड़ेगा। आहाहा! वहाँ कोई

सिफारिश काम नहीं आयेगी। भाई! हमें बहुत मानते थे। आहाहा! है स्थान? परसमय अर्थात् अन्यदर्शन। जैनदर्शन के अतिरिक्त सब परसमय है। यह जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन है। इसके अतिरिक्त **जिनका स्थान है, ऐसे अन्य योगियों...** है। भले वे मुनि नाम धराते हों। उन्हें **प्रत्याख्यान नहीं होता;...** आहाहा!

जहाँ देव-गुरु और शास्त्र की भूल है... कठिन लगता है। क्या हो? बापू! उसका भी कल्याण होओ। भूल मिटाकर कल्याण होओ। वह परमात्मा है, किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है। कोई चार गति में भटके, ऐसा भाव धर्मी को होगा? सब भगवान हैं और भगवान होओ। परन्तु इस प्रकार होओ। दूसरे प्रकार से ऐसा नहीं हुआ जाता। आहाहा! जिस-तिस सम्प्रदाय में जन्म कर जो-जो क्रियाकाण्ड करे और उससे धर्म हो, ऐसा नहीं है। यह मुनिराज ने स्पष्ट कर डाला है। आहाहा!

परसमय में (-अन्य दर्शन में) जिनका स्थान है, ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;... आहाहा! कठिन लगता है। किसी को ऐसा लगे कि यह तो दिगम्बर का एक पक्ष है। पक्ष नहीं है। दिगम्बर का धर्म, वह जैनधर्म सनातन सत्य वस्तु का धर्म है। सनातन सत्य वस्तु की यह बात है। आहाहा! इसका विवाद, झगड़ा... आहाहा! **परसमय में (-अन्य दर्शन में) जिनका स्थान है...** पर में अर्थात् जैनदर्शन के अतिरिक्त। जैनदर्शन एक यह दिगम्बर दर्शन जो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा वह। इसके अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब प्रत्याख्यानरहित हैं। वे साधु भी अप्रत्याख्यानी हैं। भले महाव्रत लेकर पड़े हों और बोले महाव्रतादि, परन्तु मूल मिथ्यात्व है; इसलिए उन्हें समकित नहीं है और प्रत्याख्यान भी नहीं है। देवीलालजी! ऐसा सब करते थे। पहले उसमें थे।

मुमुक्षु : आपकी कृपा से उद्धार हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले हम भी वहाँ थे या नहीं? आहाहा! मैं तो दुकान में बैठा होऊँ। क्या कहलाता है? गद्दी। बाजार में अपने साधु निकले, कहीं से विहार करके आवे। मैं तो एकदम खड़ा हो जाऊँ, तब दुकान छोड़ दूँ। प्रभु! महाराज आये, महाराज आये। वहाँ हमारे पालेज में आते थे न? साधु बहुत आते थे। मुम्बई का रास्ता था न? मैं तो दुकान की गद्दी पर बैठा होऊँ, वहाँ निकले हों। उनका निवास, आहार-पानी सब मैं करता था। ऐसी कहाँ खबर थी कि यह सब मिथ्या है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा के सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं कि एक शुद्ध परम दिगम्बर **'णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे।'** बाह्य और अभ्यन्तर एक नग्नपना है, उसे मोक्षमार्ग है। बाकी नग्नपने के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब उन्मार्ग हैं। यहाँ कहीं गुप्त-गुप्त नहीं रखा कुछ। झांझरीजी! यह मार्ग है। इन्हें- दिगम्बरों को भी खबर नहीं और अभी कुछ क्रियाकाण्ड में यह करे। विवाद करे, विवाद करे। मन्दिर के लिये विवाद करे और करे... अर..र..! तुझे जाना कहाँ है? बापू! कितना काल... आहाहा! तू तो अनादि -अनन्त है। अनादि-अनन्त, परन्तु यहाँ कितना रहना? २५-५०-६०-७० वर्ष। तो तुझे कहाँ जाना है? आहाहा! अनन्त-अनन्त काल भविष्य में घोर संसार पड़ा है, बापू! आहाहा! वहाँ फिर ऐसा काम नहीं आवे कि मुझे खबर नहीं थी... मुझे खबर नहीं थी... आहाहा!

ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;... आहाहा! **उन संसारियों को...** वे संसारी हैं। आहाहा! साधु नाम धरानेवाले हों या श्रावक नाम धरानेवाले हों। **उन संसारियों को पुनः पुनः घोर संसरण (-परिभ्रमण) होता है।** आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! यह वस्तुस्थिति है। तीन लोक के नाथ यह कहते हैं। जिनेन्द्रदेव के वचन हैं। कुन्दकुन्दाचार्य सीमन्धर भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। दो हजार वर्ष... वहाँ से आकर भगवान का यह सन्देश है, भगवान का यह हुक्म है - ऐसा प्रसिद्ध किया है। आहाहा! जगत को कठिन पड़े, क्या हो?

यह दिगम्बर जैनधर्म जो जैन सत्यधर्म, उससे अन्यमार्ग जो **ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;...** तब है क्या? **उन संसारियों को पुनः पुनः घोर संसरण (-परिभ्रमण) होता है।** आहाहा! कठिन पड़े, क्या हो? भाई! बापू! आहाहा! अन्यमति के बाबाओं को तो भान भी कहाँ है? जैन में आये, उन्हें भी खबर नहीं होती कि सत्य क्या है? मोक्षमार्ग क्या है? अपने सम्प्रदायरूप से माना है, सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किया। सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण है कहाँ? सब राग की क्रिया है। आहाहा! उसे सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण माना है। आहाहा!

यहाँ तो मुनिराज पक्षपात बिना इकरार करते हैं कि **संसारियों को...** अरे! जिन्हें मिथ्यात्व है और जैनदर्शन की खबर नहीं है, ऐसे जीवों को **पुनः पुनः घोर संसरण (-परिभ्रमण)**

होता है। एक भव में से दूसरा और दूसरे में से तीसरा, ऐसे पुनः-पुनः वहीं के वहीं भी वापस आते हैं। यह भव करते-करते और घूमकर यहाँ आते हैं। आहाहा! ऐसे भव करने का उसके नसीब में है। आहाहा! १४५ श्लोक हुआ।

श्लोक-१४६

(शिखरिणी)

महानन्दानन्दो जगति विदितः शाश्वतमयः,
स सिद्धात्मन्युच्चैर्नियतवसतिर्निर्मलगुणे।
अमी विद्वान्सोऽपि स्मरनिशितशस्त्रैरभिहताः,
कथं काङ्क्षन्त्येनं बत कलि-हतास्ते जड-धियः ।।१४६।।

(वीरछन्द)

जग प्रसिद्ध है अतिशय शाश्वत जो आनन्दानन्द महान।
निर्मल गुणवाले सिद्धों में नियतरूप से रहता जान॥
तो भी तीक्ष्ण काम शस्त्रों से अरे अरे घायल विद्वान।
क्लेशित होकर कामेच्छा करते हैं क्यों जड़बुद्धि अजान॥१४६॥

[श्लोकार्थः] जो शाश्वत् महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है, वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में अतिशयरूप से तथा नियतरूप से रहता है। (तो फिर,) अरे रे! यह विद्वान भी काम के तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होते हुए क्लेशपीड़ित होकर उसकी (काम की) इच्छा क्यों करते हैं! वे जड़बुद्धि हैं॥१४६॥

श्लोक -१४६ पर प्रवचन

१४६वाँ (श्लोक)।

महानन्दानन्दो जगति विदितः शाश्वतमयः,
स सिद्धात्मन्युच्चैर्नियतवसतिर्निर्मलगुणे।

अमी विद्वान्सोऽपि स्मरनिशितशस्त्रैरभिहता:,
कथं काङ्क्षन्त्येनं बत कलि-हतास्ते जड-धिय: ।।१४६ ।।

आहाहा! **जो शाश्वत् महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है,...** आत्मा तो प्रसिद्ध है। आत्मा बिना जाना किसने? कि यह है और यह नहीं, यह अमुक। आहाहा! उस आत्मा को निकाल डाला। यह है... यह है... यह है... यह है... यह है... वह तो जड़ है, वह कहीं जानता नहीं है। जाननेवाला तो यहाँ रहा। यह है, वह जाननेवाला ही जाननेरूप है। वह शाश्वत् है। अन्दर ध्रुव आत्मा शाश्वत् नित्य है। **शाश्वत् महा आनन्दानन्द...** महा आनन्दानन्द है। आहाहा! **शाश्वत् महा आनन्दानन्द...** है। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय का महा आनन्दानन्द है। आहाहा! बात यह कि उस ओर की नजर नहीं की और उस ओर की नजर करना, वह कोई साधारण बात नहीं है। अनन्त पुरुषार्थ है। पर्याय को द्रव्यसन्मुख झुकाना, वह कहीं साधारण बात नहीं है। करना यह है और यह बड़ी बात है। उसे द्रव्य क्या और पर्याय क्या, यह भी खबर नहीं होती। आहाहा! दया, दान का राग एक ओर पड़ा रहा। वह विकार है, वह नहीं। मात्र इसकी जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें जो परविषय है, उसे स्वविषय बनाना। आहाहा! वह क्योंकि महा आनन्दानन्द है और **जगत में प्रसिद्ध है,...** है न?

जगत में प्रसिद्ध है,... यह दुनिया (में) आत्मा आनन्दमय है, ऐसा प्रसिद्ध है। आहाहा! अन्यमति भी ऐसा कहते हैं (कि) वह सच्चिदानन्द प्रभु है, आनन्द है। यह जगत में प्रसिद्ध है। **शाश्वत् महा आनन्दानन्द...** दो शब्द प्रयोग किये हैं। देखा? आनन्दानन्द। आहाहा! जिसके आनन्द के समक्ष इन्द्र के सुख की भी तुलना नहीं हो सकती। इन्द्र का इन्द्रिय सुख भी जहर है और इस अतीन्द्रिय सुख की इन दोनों की जाति ही विपरीत अलग-अलग है। आहाहा! इन्द्र, जिसके पास बत्तीस लाख विमान है। उसका इन्द्र है। एक-एक विमान में असंख्य देव हैं। बड़ा बादशाह है। वह तो समकिती है। अभी है, वह वहाँ समकिती है परन्तु दूसरा कोई मिथ्यात्वी जीव हो और असंख्यदेव का स्वामी हो... आहाहा!

वह **शाश्वत् महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है,...** उसकी खबर नहीं होती। यह बाहर में सब रुक जाता है। आहाहा! वरना तो इसे पकाना, लकड़ियाँ लाना, दियासलाई या बीड़ी पीना ऐसा कुछ वहाँ देव को नहीं है। रोटियाँ बनाना, रोटियाँ करना, चूल्हा, अग्नि,

लकड़ियाँ, दियासलाई वह तो कुछ लाना नहीं है और देना नहीं है, यह सब काम तो उसे है नहीं। आहार की एक हजार वर्ष में डकार आती है तो उसके लिये कुछ चूल्हा सम्हालना, माल सम्हालना वह कुछ नहीं होता। यह सब बहुत निवृत्ति है। परन्तु वह क्या निवृत्ति है? आहाहा! वह भी अन्दर में निवृत्ति नहीं देता, बाहर से निवृत्ति इतनी होने पर भी। आहाहा! उसे नहीं विवाह करना, उसे नहीं विदुर होना, उसे नहीं... आहाहा! वस्त्र सिलना, फिर किसी के पास सिलवाना और पहिनना - ऐसा वहाँ नहीं है। वहाँ तो सब तैयार होता है। आहाहा! वह प्राणी भी दुःखी है।

यह महा आनन्दानन्द ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसे खबर नहीं है। **जगत में प्रसिद्ध है,...** आहाहा! दुनिया भी ऐसा कहती है कि आत्मा तो आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द है, सच्चिदानन्द है। ऐसी दुनिया बातें करती है। आहाहा! **वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में...** वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में **अतिशयरूप से तथा नियतरूप से रहता है।** वह धर्मात्मा वहाँ रहता है, ऐसा कहते हैं। **आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है, वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में अतिशयरूप से तथा नियतरूप से रहता है।** आहाहा! वह आत्मा उसमें रहता है। महा आनन्दानन्द में और सिद्धात्मा में वह रहता है, यह कहते हैं। आहाहा!

(तो फिर,) अरेरे!... भाषा देखो! **अरेरे! यह विद्वान भी...** विद्वान नाम धरावे और वापस राग की क्रिया से धर्म मनावे, वह तो सब काम की बात है। आहाहा! समयसार में आता है, निश्चय-व्यवहार... विद्वान है, निश्चय को तजकर व्यवहार में वर्तता है परन्तु मोक्ष तो निश्चयवाले का है। समयसार में (है)। यह विद्वान ने शास्त्र पढ़-पढ़कर व्यवहार निकाला। जो निश्चय है, वह उसमें से नहीं निकाला। इसलिए निश्चय एक ओर पड़ा रहा और व्यवहार में वर्तन हो गया और उसमें से मान बैठा तो यह संसार है। व्यवहार है, अकेला राग है, क्रियाकाण्ड है, वह संसार है। निश्चय तजकर विद्वान व्यवहार को आचरते हैं। आहाहा! ऐसा तो स्पष्ट कथन है। कठिन काम!

अरेरे! यह विद्वान भी... ऐसा कि साधारण तो ठीक। ऐसा कहते हैं। 'भी' है न? साधारण लोग तो ठीक, न समझते हों, न पढ़ते हों, न जानते हों। **विद्वान भी...** आहाहा! जिन्हें शास्त्र का जानपना है, ऐसे **विद्वान भी काम के तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होते हुए...** अर्थात् कि पर की इच्छा और कामना, उस ओर की इच्छा से **तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होते**

हुए क्लेशपीड़ित होकर... आहाहा! **उसकी (काम की) इच्छा क्यों करते हैं!** काम की-राग की भावना क्यों करते हैं? आहाहा! काम में स्त्री का विषय ही एक नहीं है। सब आठ स्पर्श है। ठण्डा-गर्म-हल्का, इन सबकी इच्छा करे। ठण्डकवाला होवे तो ठीक और गर्म होवे तो ठीक, कोमल होवे तो ठीक, कर्कश होवे तो ठीक। ऐसे आठ स्पर्श। अन्दर की कामना, वह काम है। ऐसी जिसकी कामना है, वह इस क्रिया को कैसे चाहता है? आहाहा! ऐसा भगवान अन्दर अस्पर्शी! स्पर्शरहित अन्तर महाआनन्दस्वरूप है। उसे छोड़कर विद्वान... यह ऐसा कहाँ से निकाला? उसने व्यवहार कहाँ से निकाला?

उसकी (काम की) इच्छा क्यों करते हैं! वे जड़बुद्धि हैं। आहाहा! वे विद्वान नहीं परन्तु जड़बुद्धि हैं। कठिन पड़े! आहाहा! व्यवहार से कुछ होगा... व्यवहार से कुछ होगा... नहीं तो एकान्त होगा, ऐसी उनकी पुकार है। यह एकान्त ही है। स्वरूप के ओर की दृष्टि-ज्ञान और आनन्द है, उसका वेदन करना, वह सम्यक् एकान्त ही है। वे विद्वान अन्दर चरणानुयोग में से, करणानुयोग में से, गणितानुयोग में से व्यवहार निकालते हैं। यह यहाँ व्यवहार आया... यह व्यवहार आया... सब आया। सुन! वह सब जानने के लिये है। आहाहा! आदरणीय तो एक ही चैतन्य महा आनन्द का सागर, वही एक आदरणीय है। आहाहा!

ऐसे जीव **क्लेशपीड़ित होकर उसकी (काम की)...** अर्थात् राग को चाहते हैं। **वे जड़बुद्धि हैं।** आहाहा! काम-भोग-इच्छा- आता है न? काम—राग। मूल तो राग को चाहते हैं न? वे काम को ही चाहते हैं। राग को चाहते हैं, वे तो राग के साधन को चाहते हैं। आहाहा! **वे जड़बुद्धि हैं।** लो, यहाँ तो कहा, ऐसे विद्वान भी जड़बुद्धि हैं। आहाहा! जिसमें से महा आनन्द का आनन्द ऐसा स्वभाव, वह दृष्टि में आवे नहीं और दृष्टि में सब राग, विकल्प और पुण्य तैरता है और उसके कारण उसे लाभ होगा, ऐसा मानते हैं... आहाहा! कठिन काम है। **वे जड़बुद्धि हैं।** आहाहा!

श्लोक-१४७

(मंदाक्रांता)

प्रत्याख्यानाद्भवति यमिषु प्रस्फुटं शुद्धशुद्धं,
सच्चारित्रं दुरघ-तरुसान्द्राटवी-वह्निरूपम् ।
तत्त्वं शीघ्रं कुरु तव मतौ भव्यशार्दूल नित्यं,
यत्किम्भूतं सहज-सुखदं शील-मूलं मुनीनाम् ।।१४७।।

(वीरछन्द)

दुष्ट पापरूपी वृक्षों की अटवी को जो अग्नि समान।
प्रगट शुद्ध सच्चरित करे यह संयमियों को प्रत्याख्यान॥
अतः शीघ्र निज मति में धारो तत्त्व नित्य हे भविशार्दूल।
जो कि सहज सुख देनेवाला, मुनियों को चारित का मूल॥१४७॥

[श्लोकार्थः] जो दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी को जलाने के लिए अग्निरूप है, ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को प्रत्याख्यान से होता है; (इसलिए) हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!) तू शीघ्र अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर—कि जो तत्त्व सहज सुख का देनेवाला तथा मुनियों के चारित्र का मूल है॥१४७॥

श्लोक -१४७ पर प्रवचन

(श्लोक) १४७।

प्रत्याख्यानाद्भवति यमिषु प्रस्फुटं शुद्धशुद्धं,
सच्चारित्रं दुरघ-तरुसान्द्राटवी-वह्निरूपम् ।
तत्त्वं शीघ्रं कुरु तव मतौ भव्यशार्दूल नित्यं,
यत्किम्भूतं सहज-सुखदं शील-मूलं मुनीनाम् ।।१४७।।

आहाहा! **जो दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी को जलाने के लिए अग्निरूप है...** आहाहा! **दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी...** पुण्य और पाप दोनों। जो दुष्ट पुण्य-पापरूपी

वृक्षों की घनी अटवी... घनी अटवी। ऐसी भरपूर वनस्पति। मार्ग नहीं मिले। उस घनी बस्ती में। **अटवी को जलाने के लिए अग्निरूप है, ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को...** आहाहा! **ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को प्रत्याख्यान से होता है;...** यह संयम, प्रत्याख्यान से होता है।

श्रीमद् ने कहा न? दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। यह वस्तु की स्थिति है। कठिन लगे, न जँचे, इससे कहीं सत्य बदल जाएगा? आहाहा! **दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी...** लोग नहीं कहते, घनी ऐसे खचाखच भरपूर वनस्पति। आहाहा! कहीं पैर रखने का स्थान न हो, इतनी वनस्पति हो। जंगल में घनी वनस्पति होती है। मुम्बई से पूना जाते हैं न? वहाँ नीचे बहुत आती है। इतनी झाड़ियाँ... इतनी झाड़ियाँ... वहाँ वृक्ष और वनस्पति... वनस्पति... वनस्पति... क्योंकि कोई जा नहीं सकता, इसलिए वनस्पति के ढ़ेर हुए। मुम्बई से पूना जाते हुए रास्ते में आते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जो दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी को जलाने के लिए अग्निरूप है, ऐसा प्रगट...** आत्मा प्रगट है, व्यक्त ही है। **शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को...** ऐसा **शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को प्रत्याख्यान से होता है;...** इस प्रत्याख्यान से ऐसा प्रगट होता है। आहाहा! यह प्रत्याख्यान, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित अन्दर रमणता, रागरहित अन्दर रमणता, उसका नाम प्रत्याख्यान है, उसका नाम पच्चक्खाण है। आहाहा! **(इसलिए) हे भव्यशार्दूल!** आहाहा! **हे भव्यशार्दूल!** हे भव्य सिंह! मुनिराज कहते हैं, देखो! हे भव्य सिंह! तुझमें अनन्त पराक्रम पड़ा है, प्रभु! तुझमें अनन्त बल है परन्तु उसे यदि माने तो न! उसे माने बिना पर्याय में नहीं दिखता। आहाहा! अन्दर अनन्त बल है, अनन्त शान्ति है, अनन्त वीतरागता है, अनन्त स्वच्छता और शान्ति से भरपूर समता को सागर है। आहाहा!

(इसलिए) हे... आहाहा! है? **भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!)...** भव्य में भी उत्तम। **तू शीघ्र अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर...** देखो! उसमें वापस शीघ्र आया। वायदा करना नहीं। आहाहा! अभी नहीं... अभी नहीं... अभी लड़कों का विवाह कर दें, लड़कियों को ठिकाने करें। मकान-बकान बनाना है। बाद में (करेंगे) परन्तु बीच में मर जाएगा तो क्या? आहाहा! जवान लोग मर जाते हैं। आहाहा! **(भव्योत्तम!) तू शीघ्र अपनी मति में**

तत्त्व को नित्य धारण कर... यह क्रमबद्ध में आया या नहीं ? क्रमबद्ध में यह आया, जिसने ऐसे नजर की है, उसे शीघ्र तेरी (अपनी) मति में तत्त्व को नित्य धारण करता है। आहाहा!

शीघ्र अपनी मति में... मतिज्ञान में। **तत्त्व को नित्य धारण कर...** मतिज्ञान में आत्मा के तत्त्व को धारण कर। राग को, पुण्य को धारण करके अनादि से मर गया। आहाहा! पुण्य और पाप के परिणाम करके और धारण करके मर गया। जीना हो तो यह, ऐसा कर। तत्त्व से जीना हो तो, तत्त्व को जीवित रखना हो तो ऐसा कर। आहाहा! **कि जो तत्त्व...** कैसा है ? **सहज सुख का देनेवाला...** भगवान आत्मा स्वभाविक आनन्द को देनेवाला है। उसमें जो आनन्द है, वैसा आनन्द कहीं नहीं है। इन्द्र के इन्द्रासन में नहीं है। आहाहा! यह दूधपाक, पूड़ी, भुजिया खावे तो मानो ऐसा... आहाहा! वह जहर है। यह मिठास लगती है, वह जहर की है। यह सुख तो अन्तर का है, कहते हैं। आहाहा! है ?

जो तत्त्व सहज सुख का देनेवाला... जो तत्त्व स्वभाविक सुख का देनेवाला है। देनेवाला अर्थात् तू अन्दर देख तो देनेवाला है, ऐसा कहते हैं। **तथा मुनियों के चारित्र का मूल है।** आहाहा! मुनियों के चारित्र का मूल। यह सूक्ष्म पड़े, इसलिए लोग कुछ न कुछ साधन.. साधन, व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... कहीं किसी समय तो कहो, ऐसा कहते हैं। किसी समय किसलिए ? जब आता है, तब हर समय कहे नहीं कि व्यवहार है ? है परन्तु उससे लाभ नहीं है। व्यवहार तो आता है। आहाहा! परन्तु उससे कल्याण नहीं होता, सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्ज्ञान नहीं होता, सम्यक्चारित्र नहीं होता। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा - राग-बाग छोड़कर तेरी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर। आहाहा! **कि जो तत्त्व सहज सुख का देनेवाला...** आत्मा स्वभाविक आनन्द का देनेवाला तत्त्व है। आहाहा! उस आनन्द को बाहर में खोजने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। अन्तर आनन्द से अन्तर्मुख देख तो आनन्द है। आहाहा! बहिर्मुख देख तो राग और दुःख है। आहाहा! भगवान आत्मा को बहिर्मुख देख, तो वहाँ राग और दुःख है। अन्तर्मुख देख तो रागी को सुख है। वीतरागी सुख है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐसा श्लोक और ऐसे अर्थ! कहो, यह **मुनियों के चारित्र का मूल है।** लो, यह १४७ वाँ (श्लोक) हुआ।

श्लोक-१४८

(मालिनी)

जयति सहज-तत्त्वं तत्त्व-निष्णात-बुद्धेः
हृदय-सरसि-जाताभ्यन्तरे सन्स्थितं यत्।
तदपि सहज-तेजः प्रास्त-मोहान्धकारं,
स्वरसविसरभास्वद्बोधविस्फूर्तिमात्रम् ।।१४८।।

(वीरछन्द)

शुद्ध तत्त्व में निपुण बुद्धिवाले जीवों के अन्तर में।
सुस्थित है वह सहज तत्त्व जयवन्तो नितप्रति जीवन में॥
ऐसे सहज तेज ने जग के मोह तिमिर का किया विनाश।
वह निज रस विस्तार प्रकाशित शुद्धज्ञान का मात्र प्रकाश॥१४८॥

[श्लोकार्थः] तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सुस्थित है, वह सहज तत्त्व जयवन्त है। उस सहज तेज ने मोहान्धकार का नाश किया है और वह (सहज तेज) निज रस के विस्तार से प्रकाशित ज्ञान के प्रकाशनमात्र है॥१४८॥

श्लोक -१४८ पर प्रवचन

श्लोक १४८।

जयति सहज-तत्त्वं तत्त्व-निष्णात-बुद्धेः
हृदय-सरसि-जाताभ्यन्तरे सन्स्थितं यत्।
तदपि सहज-तेजः प्रास्त-मोहान्धकारं,
स्वरसविसरभास्वद्बोधविस्फूर्तिमात्रम् ।।१४८।।

१४७ हुआ न? अब १४८।

तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सुस्थित है,... आहाहा! धर्मी उसे कहते हैं कि जो तत्त्व में निष्णात है। आहाहा! आत्मतत्त्व, वह शुद्ध आनन्द है। रागादि, वह दुःख है; शरीरादि वे पर हैं। स्त्री, परिवार, स्त्री पुत्र तो सब पर हैं। वे इसके थे कब? आहाहा! पति मरकर नरक में जाए और पत्नी मरकर स्वर्ग में जाए। उसके परिणाम पर आधार है न? पति मरकर स्वर्ग में जाए और पत्नी मरकर नरक में जाए। आहाहा! ऐसा स्वतन्त्र स्वरूप है।

इसलिए **तत्त्व में निष्णात बुद्धि...** तत्त्व की स्थिति जो वस्तु है, उसमें निष्णात - निपुण **बुद्धिवाले जीव के हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सुस्थित है,...** अन्तर भगवान सुस्थित है। **तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सुस्थित है,...** आहाहा! **वह सहज तत्त्व जयवन्त है।** वह स्वभाविक तत्त्व जयवन्त है। आहाहा! वह स्वभाविक तत्त्व वर्तमान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रत्यक्ष करके कहते हैं कि जयवन्त है, ऐसा हम कहते हैं। आहाहा! कोई कहे, वैसा मानकर-ऐसा नहीं। **सहज तत्त्व जयवन्त है।** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसका अनुभव होने पर वह तत्त्व जयवन्त वर्तता है। आहाहा! भाषा सब दूसरी, बातें दूसरी।

उस सहज तेज ने मोहान्धकार का नाश किया है... सहज तेज ने। चैतन्य का तेज जो ज्ञान और आनन्द का तेज। ज्ञान और आनन्द का चमत्कार, उसने मोहान्धकार का नाश किया है। आहाहा! जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार नहीं होता। जहाँ सूर्य प्रकाशित हो, वहाँ अन्धेरा नहीं होता। इसी प्रकार जहाँ चैतन्य का प्रकाश हुआ, वहाँ मोहान्धकार नहीं रहता। आहाहा! **उस सहज तेज ने मोहान्धकार का नाश किया है और वह (सहज तेज) निज रस के विस्तार से...** आहाहा! कहते हैं कि विस्तार प्राप्त वह तत्त्व निज रस का विस्तार है। ज्ञान और आनन्द की शक्ति की व्यक्तता बढ़ जाए, वह सब आनन्द का - ज्ञान का - निज तत्त्व का विस्तार है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति अन्तर्मुख करने से अन्दर बढ़ जाए, वह सब तत्त्व का विस्तार है। कुछ बाहर से नहीं आता। आहाहा!

निज रस के विस्तार से... अपने अतीन्द्रिय आनन्द के विस्तार से शोभित हो रहा है। आहाहा! **प्रकाशित ज्ञान के प्रकाशनमात्र है।** वह ज्ञान, तत्त्व को प्रकाश करता, आनन्द का प्रकाश होने पर, अनन्त गुण का विकास होने पर वह ज्ञान का ही प्रकाश है और

आत्मा का ही प्रकाश है। आहाहा! अनन्त गुण जो खिलते हैं, तत्त्व में अनन्त गुण हैं और उस तत्त्व को जहाँ अनुभव करता है, उस तत्त्व को पकड़ता है, तब ज्ञानादि आनन्द का विस्तार होता है, वह अन्दर में से आता है। वह तत्त्व में से आता है, कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! कहो, श्लोक भी सब ऐसे हैं। **वह (सहज तेज) निज रस के विस्तार से...** ज्ञान के प्रकाश का वह तो है। आहाहा!

श्लोक-१४९

(पृथ्वी)

अखण्डित-मनारतं सकल-दोष-दूरं परं,
भवाम्बुनिधि-मग्नजीवततियानपात्रोपमम् ।
अथ प्रबल-दुर्ग-वर्ग-दव-वह्नि-कीलालकं,
नमामि सततं पुनः सहजमेव तत्त्वं मुदा ।।१४९।।

(वीरछन्द)

सहज तत्त्व जो सदा अखण्डित शाश्वत सकल दोष से दूर।
नौका तुल्य उन्हें जो डूबे भवसागर में जीव समूह॥
संकटपुञ्जरूप दावानल-शान्ति हेतु जो नीर समान।
अतिप्रमोद से सतत नमूँ उस सहज तत्त्व को जो गुणखान॥१४९॥

[श्लोकार्थः] और, जो (सहज तत्त्व) अखण्डित है, शाश्वत है, सकल दोष से दूर है, उत्कृष्ट है, भवसागर में डूबे हुए जीवसमूह को नौका समान है तथा प्रबल संकटों के समूहरूपी दावानल को (शान्त करने के लिए) जल समान है, उस सहज तत्त्व को मैं प्रमोद से सतत नमस्कार करता हूँ॥१४९॥

श्लोक -१४९ पर प्रवचन

१४९, ओहो! अभी बहुत हैं।

अखण्डित-मनारतं सकल-दोष-दूरं परं,
भवाम्बुनिधि-मग्नजीवततियानपात्रोपमम्।
अथ प्रबल-दुर्ग-वर्ग-दव-वह्नि-कीलालकं,
नमामि सततं पुनः सहजमेव तत्त्वं मुदा।।१४९।।

और, जो (सहज तत्त्व) अखण्डित है,... जिसमें पर्याय का खण्ड नहीं, ऐसा अखण्ड तत्त्व है। आहाहा! अरूपी है और नजरें रूपी में जाती है। भगवान स्वयं अरूपी है। उस अरूपी की नजरें रूपी में जाती है। परन्तु नजरें जाने पर भी ज्ञात होती है, वह अरूपी की पर्याय और यह मानता है कि वह (रूपी) ज्ञात होता है। उसे स्पर्श भी नहीं करता और ज्ञात कहाँ से हो? आहाहा! अपनी ज्ञानपर्याय में वह सब जानने की शक्ति स्वतन्त्र स्वतः है। **जो (सहज तत्त्व) अखण्डित है,...** पर को जानने पर पर्याय में खण्ड-खण्ड होता है, ऐसा नहीं है। वह अखण्ड है। आहाहा! ज्ञानस्वरूप से अखण्ड है। वे आते हैं न? मति-श्रुत अभिनन्दन अभिनन्दता है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल यह कहीं खण्ड नहीं करता। पर्याय को अभिनन्दता है, पुष्टि करता है। समयसार (गाथा २०४) में आता है। अखण्डित है। आहाहा!

शाश्वत् है... त्रिकाल शाश्वत् है। आदि-अन्तरहित चीज़ है। आदि नहीं, अन्त नहीं, स्वभाव से खाली नहीं। आदि नहीं, अन्त नहीं और वर्तमान स्वभाव से खाली नहीं, ऐसा तत्त्व शाश्वत् वर्तता है। आहाहा! सकल दोष से दूर है। सब दोष विकल्पमात्र जो राग। चाहे तो भगवान के स्मरण के रागादि हों, उनसे भी भिन्न है, दूर है। आहाहा! उस तत्त्व में इस भगवान का स्मरण और राग का भाग नहीं है। उससे तत्त्व अत्यन्त भिन्न है।

उत्कृष्ट है,... चैतन्यतत्त्व उत्कृष्ट है। ऊँचे में ऊँचा तीन लोक का नाथ, ऐसा आत्मा, उसके जैसी कोई चीज़ जगत में नहीं है। आहाहा! **भवसागर में डूबे हुए जीवसमूह को नौका समान है...** भवसागर में डूबे हुए जीवसमूह को... आहाहा! डूबा हुआ किसे कहना, हम लहर करते हैं न? राग और पुण्य-पाप को मेरा माने, वह भवसागर में डूब पड़ा है।

आहाहा! **भवसागर में डूबे हुए जीवसमूह को...** वह तत्त्व सहज है, वह नौका समान है। **तथा प्रबल संकटों के समूहरूपी दावानल को (शान्त करने के लिए) जल समान है,...** प्रबल जो रागादिभाव, उनका नाश करने के लिये जल समान है। आहाहा!

उस सहज तत्त्व को मैं प्रमोद से सतत नमस्कार करता हूँ। मुनिराज ने स्पष्ट किया। **प्रमोद से सतत (निरन्तर) नमस्कार करता हूँ।** ऐसा जो मेरा भगवानस्वरूप तत्त्व, उसे मैं सतत-निरन्तर नमस्कार करता हूँ। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)